International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 283-285

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 283-285
© 2017
www.anantaajournal.com
Received: 25-05-2017
Accepted: 26-06-2017

डॉ० नवीन चन्द
दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब, भारत

Correspondence
डॉ० नवीन चन्द
दयानन्द वैदिक अध्ययन पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब, भारत

युगानुरूप भारत का भौगोलिक परिवर्तन

डॉ० नवीन चन्द

सारांश
प्रस्तुत शोध–पत्र में भारत एवं भारतीय संस्कृति पर चिन्तन करते हुए वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल पर्यन्त हुए भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम यह विचार किया जाना बहुत आवश्यक है कि हम किसका वर्णन करेंगें–भारत, भारतवर्ष, इण्डिया, हिन्दुस्तान, आर्यावर्त या जम्बूद्वीप। इतिहास साक्षी है कि ये सब भारत के ही समयानुसार परिवर्तित नाम हैं। यह बात आंशिक रूप से सत्य भी है। आंशिक इसलिए कि ये भारत अथवा इण्डिया के नाम नहीं अपितु जम्बूद्वीप के ही अलग–अलग हिस्सों के नाम है। कालचक्र के साथ जम्बूद्वीप के टुकड़े होते गए और उसी विभाजन के परिणामस्वरूप विभिन्न नामकरण भी होते गए।
अब प्रश्न उठता है कि प्राचीन भारत कहाँ तक था? उसकी सीमा क्या थी? यह जब तक स्पष्टत्या न जान लिया जाय, तब तक भारतीय संस्कृति का विस्पष्ट चित्र सामने आना कठिन है। इसका कारण यह है कि जितने भी भारतीय आचार, व्यवहार, कला, कौशल आदि हैं, वे सब प्राचीन ग्रन्थों में निबद्ध हैं। अद्यतनीय भारत उसकी अपेक्षा बहुत संकुचित हो गया है। उसे तो जाने दीजिए भारत का जो भूगोल आज से 20 वर्ष पहले था, वह भी आज नहीं है।

मुख्यशब्दः– आर्यावर्त, भौगोलिक, संस्कृति, आध्यात्मिकता।

प्रस्तावना

बृहत्तर भारत तथा विभिन्न नाम

वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर हमें भारत की भौगोलिक परिस्थिति का सम्यक् ज्ञान होता है। प्राचीन वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि भारत की पूर्वीय सीमा चीनसागर था। इस सीमा के अन्तर्गत ब्रह्मदेश, (बर्मा) स्याम, रंगून आदि सम्मिलित थे। भारत की पश्चिमी सीमा लाल सागर (भू–मध्य सागर) तक फैली हुई थी जिसमें अद्यतनीय पाकिस्तान, विलोचिस्तान, ईरान, मेसोपोटामिया और अरब भी सम्मिलित थे। इस प्रकार पूर्वी चीन–समुद्र से पश्चिम में लाल–सागर तक विस्तृत भूभाग भारत कहलाता था। इस विषय में अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। भारत की दक्षिणोत्तर सीमा तो हिमालय और कन्याकुमारी तक प्रसिद्ध ही है।
ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 86 वें सूक्त से प्रारम्भकर आगे के सूक्तों में एक वाक्–कलह का उल्लेख उपलब्ध होता है। तदनुसार ऋश्राश्व ऋषि का दौहित्र जरथुस्त्र नाम का व्यक्ति था, जो ब्राह्मण–वर्ग से द्वेष करता था। ब्राह्मण–द्वेष के कारण ही उसने बाह्मी लिपि के विरुद्ध उल्टी लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का प्रसार किया। उसी के समय वाह्लीक देश में सोत्रामणि इष्टि (यज्ञ) में ऋषि इस विषय पर आपस में झगड़ पड़े कि इन्द्र को प्रधान देवता माना जाय अथवा वरुण को। जरथुस्त्र ने परम्परागत इन्द्र के प्राधान्य को अस्वीकार किया और उसके स्थान पर वरुण के प्राधान्य को प्रतिष्ठित किया। इसका संकेत ऋक्–संहिता में 'नेन्द्रं देवममंसत' इस मन्त्रांश में पाया जाता है। उपस्थित ऋषियों में नृमेधा, हिरण्यस्तूप, वामदेव, गार्ग्य आदि ने इन्द्र के पक्षधर थे जबकि सुपर्ण, काण्व, भरद्वाज आदि ने वरुण का पक्ष स्वीकार किया। वसिष्ठ आदि ऋषियों ने अपने–अपने स्थान पर दोनों को समान माना। ऋषियों का वैमत्य, इन्द्राणी का क्रोध, ये सब इतना बढ़ गया कि मनुष्यावतारी ब्रह्मा ने, जोकि बड़े विद्वान, महाप्रभावशाली और महातेजस्वी थे, भारत के दो भाग कर दिये। सिन्धु नदी से पश्चिम का भाग वरुण के प्रभुत्व को स्वीकार करने वालों को दिया जबकि पूर्व का भाग इन्द्र को प्रधान माननेवालों को दिया। इस घटना से भी भारतीय सीमा के अति विस्तृत होने का प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि इससे सिद्ध होता है कि सिन्धु को मध्य में मानने पर जितना प्रदेश सिन्धु के पूर्व में है, उतना ही पश्चिम में मानना पड़ेगा और वह भाग भूमध्य सागर तक ही पहुँचेगा। इस प्रकार विभाग होने के अनन्तर सिन्धु के पार वाले पूर्वीय तटवाले लोगों को सिन्धुस्थानीय कहा जाने लगा।

'हिन्दुस्तानी' शब्द इसी का भाषावैज्ञानिक ढंग से विकृत रूप है। इसी प्रकार प्राचीन वाङ्मय में प्रयुक्त ये सिन्धुस्थान और पारस्थान शब्द आपेक्षित है और भारत की पश्चिमी सीमा का निर्धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वीय भाग के लिए आर्यावर्त्त संज्ञा प्रसिद्ध हुई, और पश्चिमी भारत के लिए 'आर्यायण' शब्द का प्रचलन हुआ। विशेष बात यह है कि आवर्त्त और आयन शब्द का एक ही तात्पर्य है। वही आर्यायण शब्द भाषा–नियम से 'ईरान' बन गया। ये दो संज्ञायें दोनों भागों में आर्यों की स्थिति और उनकी प्रधानता की ओर संकेत करती हैं और भारत के सीमा विस्तार को भी पुष्ट करती हैं।

इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि लाल सागर से पूर्व और सिन्धुनदी से पश्चिम कास्पियन सागर के दक्षिण भूभाग के लिए के पुराने लोग ओरियन्स ;व्तपमदेद्ध शब्द प्रचलित था। यह शब्द 'आर्यवंश' शब्द का अपभ्रंश प्रतीत होता है। एक अनुमान के अनुसार है कि ब्राह्मण–विरोधी जरथुस्त्र के अनुयायी लोग विपरीतगामी होने के कारण 'वामग' कहलाये, उसी का 'वा' टूटकर 'मग' जाति प्रसिद्ध हुई और प्राचीन आर्यों के विरोधी होने के कारण उन्हे आर्यों का बाधक 'आर्यस्पश' कहा गया। उनका देश भी 'आर्यस्पश' कहलाया। वही शब्द 'आर्यस्प' और धीरे–धीरे 'ओरिन्यस' के रुप में आ गया। जो भी हो, इस प्रकार से वह ओरिन्यस देश 'आर्यों का निकेतन' सिद्ध होता है और इस संज्ञा से भी पश्चिम विभाग में आर्यों का निवास स्फुट अनुमित होता है।

ऐरियाना शब्द, जो कि पश्चिम देशों के लिये प्रयुक्त है, वह भी आर्यनिवासमूलक ही है। इण्डिया और वामनियाँ शब्द भी आर्यनिवासमूलक ही प्रतीत होते हैं।

मनु ने जो आर्यवर्त्त प्रदेश की सीमा निधारित की है तदनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक 'आर्यावर्त्त' कहा जाता है।[1] यह भारतवर्ष के अन्तर्गत आर्यावर्त्त की सीमा का निर्देश है। यहाँ पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र शब्द से बंगाल की खाड़ी और अरब सागर अभिप्रेत नहीं हो सकता, अपितु चीन–सागर और लाल–सागर से ही तात्पर्य है। भूगोल के चित्र में विन्ध्याचल और हिमालय के मध्यभाग से पूर्व और पश्चिम की ओर सीधी पंक्ति खींची जाए, तो उपर्युक्त दोनों समुद्र ही दोनों सीमाओं के अन्तर्गत आएंगे। बंगाल की खाड़ी और अरब–सागर इस पंक्ति से दक्षिण भाग में रह जायेंगे। मनु का यह साक्ष्य पूर्व और पश्चिम सीमा के विस्तार को स्पष्टतया प्रकट करता है। महाभाष्यकार पतंजलि के मतानुसार आदर्श से पूर्व कालकवन से पश्चिम हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर भारत कहलाता है।[2] यहां आदर्श से तात्पर्य भूमध्य सागर के उत्तर–प्रान्त में स्थित तारस पर्वत से है। तूरस पर्वत को, (जिसका नाम सिनाई पर्वत भी है) आदर्श पर्वत के नाम से गृहीत किया जा सकता है। यह आदर्श पर्वत पश्चिम समुद्र या यहूदी नाम के यवन–देश के समीप है। कुछ विद्वानों के मतानुसार महाभाष्य में प्रयुक्त उक्त आदर्श शब्द से तात्पर्य है, सिन्धु नदी के दक्षिण में स्थित सुलेमान पर्वत। परन्तु यह युक्ति–युक्त नहीं, क्योंकि पश्चिम सीमा में जो यवन–देश और समुद्र का निर्देश किया गया है, वह सुलेमान पर्वत के 'आदर्श' से गृहीत होने पर उत्पन्न नहीं होता। तारस नाम के सिनाई पर्वत का 'आदर्श' नाम से गृहीत होना अक्षर–साम्य भी रखता है।

सूर्यसिद्धान्त के भूगोलाध्याय में वर्णित साक्ष्य के अनुसार लंका और सुमेरु का स्पर्श करपे वाली जो रेखा है, उसे ही भारतवर्ष की मध्यरेखा कहा गया है। अतः उसके पूर्व के 45^0 से व्याप्त जो भूभाग है, वही भारतवर्ष है–यह सिद्ध हुआ।[3] भारतवर्ष से 90^0 पूर्व में भद्राश्व वर्ष है और भद्राश्व से 90^0 उत्तर की ओर उत्तर कुरुवर्ष है। उसके उतने ही अंश बाद केतुमाल वर्ष आता है। इस प्रकार, भू–पद् के चार दलों का वर्णन मिलता है। भारतवर्ष की मध्य रेखा उज्जयिनी पर मानी गई है। यह उज्जयिनी 23/9 उत्तर अक्षांश में स्थित है। पाश्चात्य विद्वान् ग्रीनविच् नाम की मध्य रेखा से देशान्तर की गणना किया करते है। उज्जयिनी के ऊपर से होकर गई हुई भारतीय मध्य रेखा और पाश्चात्य विद्वानों की सम्मत ग्रीनविच् मध्यरेखा में 75/43 अंशों का अन्तर है। इस प्रकार, भूमध्य रेखा पर स्थित उज्जयिनी से 45^0 पश्चिम तक भारत की पश्चिम सीमा सिद्ध होती है और वह प्रदेश भूमध्य सागर के समीप ही ठहरेगा।

पुराणों में भारतवर्ष के 9 उपद्वीपों का वर्णन उपलब्ध होता है यथा–

1. इन्द्रद्वीप(अंडमन)
2. नागद्वीप(नीकोबर)
3. सौम्यद्वीप(यवद्वीप)
4. गान्धर्वद्वीप(फिलीपाइन द्वीप, संघ)
5. वारुण द्वीप(बोर्निया)
6. कशेरुमान्(कसेरु)
7. गभस्तिमान् (मलूका)
8. ताम्रपर्ण–सिंहल(सीलोन)
9. कुमारिका(कुमारी)

इससे यह स्पष्ट होता है कि जब इतने दूरस्थ देश उपद्वीप में परिवर्तित हो गये, तो निस्सन्देह भारतवर्ष की सीमाएं भी दूर–दूर तक फैली हुई थी क्योंकि सीमा के समीपवर्ती प्रदेश ही तो उपद्वीप कहलाते हैं।

भौगोलिक स्थिति के विषय में चर्चा करते समय इस बात पर ध्यान देना आश्यक है कि आधुनिक तथा वैदिक समुद्र, पर्वत और नदियों के नामों में साम्य होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी स्थिति तथाच प्रवाह–मार्ग प्राचीन काल में भी उसी स्थान पर था जिस स्थान पर वह आजकल विद्यमान है। क्योंकि यह भी सत्य है कि समयानुसार नदियाँ तथा घाटियाँ स्थान बदलती रहती हैं। काण्व–संहिता और मैत्रायणी–संहिता में वर्णित कथानक के अनुसार प्राचीन काल में पर्वतों के पंख थे, वे जहाँ चाहते थे, उड़ कर जाया करते थे। इससे उत्पन्न जनधन की हानि को दखते हुए इन्द्र ने पर्वतों के पंख काटकर पृथ्वी को सुरक्षित बनाया।[4]

भौगोलिक परिवर्तन :–

पर्वत विषयक– पर्वत विशेष के नामों में 'हिमवन्त' (हिमालय) का नाम आता है, परन्तु इसके विस्तार के विषयों में किसी प्रकार का निर्देश नहीं मिलता। ऋग्वेद् के एक प्रसंग से पता चलता है कि सोमलता मूजवत् के ऊपर उगती थी,[5] यह मूजवत् पर्वत का नाम था,[6] जिसकी स्थिति की जानकारी के विषय में अथर्व–संहिता हमारी सहायता करती है। अथर्ववेद के 5वें काण्ड के 21वें सूक्तानुसार मूजवत् पर्वत बहुत दूर उत्तर–पश्चिम में गान्धार या वाह्लीक देश के पास कहीं पर था। यही पर्वत सोमलता का मूल स्थान था, जहाँ से सोम लाकर यज्ञ में प्रस्तुत किया जाता था। तैत्तिरीय–आरण्यक में क्रौंच, मैनाक, सुदर्शन पर्वतों के नाम पाये जाते है।[7] इसी आरण्यक में 'महामेरु' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है,[8] जिसे कश्यप नाम का अष्टम सूर्य कभी नहीं छोड़ता, बल्कि सदा उसकी परिक्रमा किया करता है। इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि 'महामेरु' से यहाँ अभिप्राय 'उत्तरी–ध्रुव' से ही है।

समुद्र विषयक– समुद्र के विषय में ऋग्वेदकालीन आर्य परिचय रखते थे या नहीं इस विषय को पाश्चात्य विद्वानों ने हमेशा नकारा है। परन्तु वेदों के गाढ़ अनुशीलन से स्पष्ट है कि न केवल समुद्र अपितु मुक्तादि समुद्री रत्नों से भी उस समय आर्य पूर्णतया परिचित थे। ऋग्वेद–संहिता में नदियों के समुद्र में गिरने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[9] इतना ही नहीं बल्कि जहाँ आजकल राजपूताने की मरुभूमि में बालुकायें लहर मार रही हैं वहाँ उस समय एक लम्बा चौड़ा समुद्र था। आजकल के पूरबी भाग गंगा–यमुना की घाटी का स्थान भी, जहाँ आज उत्तर–प्रदेश तथा बिहार के प्रदेश अपनी जनसमृद्धि से शोभायमान है, उस समय वह समुद्र के नीचे था। ऋग्वेद[10] और अथर्ववेद[11] में समुद्रजात वस्तुओं का और विशेषतः समुद्र से उत्पन्न मुक्ता का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया गया है।

नदी विषयक–वैदिक साहित्य में अन्य भौगोलिक नामों की अपेक्षा नदियों के नाम कहीं अधिक बहुलता से उपलब्ध होते है। ऋग्वेद् में 'सप्त–सिन्धव' शब्द अनेक बार उल्लिखित हुआ है परन्तु ये सात नदियाँ कौन सी है क्योंकि नदियाँ तो सात से बहुत अधिक है। परन्तु समुद्र के लिए भी 'सिन्धु' का प्रयोग मिलता है। अतः सम्भव है कि 'सप्त सैन्धव' ही सात समुद्रों के लिए प्रयुक्त हुआ हो।

ऋग्वेद के 10वें मण्डल में एक पूरा सूक्त ही नदियों की स्तुति में प्रयुक्त हुआ है। यह सूक्त 'नदीसूक्त' कहलाता है,[12] जिसमें सिन्धु–तीरस्थ किसी प्रैयमेध नामक ऋषि ने अपनी सहायक नदियों से सम्बन्धित सिन्धु से प्रार्थना की है। इस सूक्त में बहुत सी नदियों के नाम आते हैं कुछ के नाम आज वैसे ही प्राप्त है पर अधिकों के परिवर्तित हैं यथा–जैसे के तैसे जो उपलब्ध हैं–

गंगा, यमुना, सरस्वती इत्यादि और परिवर्तित नाम है शुतुद्री–सतलुज, परुष्णी–रावी, असिक्नी–चिनाब, मरुद्वृधा – मरुवर्दवान्, वितस्ता–झेलम, आर्जीकिया–विपाशा या व्यास, सुषोमा–सोहन।[13] सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों का नामोल्लेख भी इस सूक्त में मिलता है। यथा तृष्टामा–जासकर, सुसर्तु–सुरु, रसा–शेबक। श्वेती और कुभा आज भी उसी नाम से है।[14] मेहत्नू–सवान गोमती–गोमाल, क्रुमु–कुर्रम, सुवास्तु–स्वात, सरयू–हरिरुद् इत्यादि।[15]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत अतिविस्तृत था। हमारे वेदों ने तो पृथिवी को माता और स्वयं को इसका पुत्र बताते हुए राष्ट्रीयता की भावना जनमानस के हृदय में जगाने का प्रयत्न किया है यथा–

'माता भूमिः पुत्राऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तुः'।।

अथर्व 12.01.12

भारत और भारतीय संस्कृति में युगानुकूल परिवर्तनों की स्वीकार करते हुए, अपनी नित्य जीवन दृष्टि या मूल्य प्रणाली को संरक्षित करने की अद्भुत् क्षमता है। अतः हम इसी का अनुसरण करते हुए प्रार्थना करते है–

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेद्'।।

सन्दर्भ–सूची :–

1. मनुस्मृति 2.22
   'आसमुद्रात्तु वै पूर्वासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
   तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः'।।
2. व्याकरणमहाभाष्य
   'प्रागादर्शात् प्रत्यक् कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण पारियात्रम्'।
3. सूर्यसिद्धान्त 12.38–39,42
   'भूवृत्तपादे पूर्वस्यां नव कोटीति विश्रुता।
   भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरणा।।
   याम्यायां भारते वर्षे लंका तद्वन्महापुरी।
   पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तित्ता।।
   तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकरः।
   न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते'।।
4. ऋक्2.12.02
   'यः पृथिवीं व्यथमानमदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपितां अरम्णात्'।
5. वही 10.34.1
6. निरुक्त 9.8
7. तैत्तिरीय आरण्यक 1.31
8. वही 1.07
9. ऋक् 1.71.7
   'अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्तय"वीः'।
10. वही 1.47.06
11. अथर्व 19.38.2
12. ऋक् 10.75
13. वही 10.75.05
    'इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।
    अस्क्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकीये श्रणुह्या सुषोमया'।।
14. वही 10.75.06
    'तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्याया।
    त्वं सिंधो कुभता गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे'।।
15. वही 5.53.09
    'मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्निरीरमत्।
    मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीविण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु वः'।।
16. अर्थवेद– विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान साधु–आश्रम, होशियारपुर , 1963
17. ऋग्वेद– विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान साधु–आश्रम, होशियारपुर, 1963
18. निरुक्तम्– सीताराम शास्त्री, परिमल पब्लिकेशन दिल्ली, 2002
19. मनुस्मृति– प्रवीण प्रलयंकर, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, दिल्ली, 2004
20. व्याकरणमहाभाष्य– प्रो॰ भीमसिंह वेदालंकार, विद्यानिधि शोध संस्थान, कुरूक्षेत्र, 2006
21. वैदिक दर्शन, डॉ॰ फतेह सिंह, भारती भण्डार लीडर प्रैस इलाहबाद, 1963
22. वैदिक धर्म एवं दर्शन, डॉ॰ सूर्यकान्त, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पटना, बाराणसी, 1960
23. वैदिकविज्ञान और भारतीय संस्कृति, म॰ म॰ गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, 2006
24. सूर्यसिद्धान्त, श्री कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, 1987